International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 11, pp: 77-79 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य की आर्थिक स्थिति

Priyanka Kumari
Assistant Prof. (Dept. of Law) SociologyVBSPU Jaunpur U.P.

Date of Submission: 05-12-2020 Date of Acceptance: 20-12-2020

सारांशः– एक मार्क्सवादी अवधारणा जिसके अनुसार यह माना जाता है कि मजदूर के श्रम से पैदा होने वाले संपूर्ण मजदूरी का लाभ श्रमिक को नहीं दिया जाता, अपितु उसके एक अंश को उद्योगपति अपने लाभ में समायोजित कर लेते हैं श्रम का अंश ही अतिरिक्त मूल्य कहलाता है। मार्क्स के अनुसार अतिरिक्त मूल्य मजदूर के शोषण का प्रतीक है।

मुख्य शब्दः– अतिरिक्त मूल्य, श्रमिक, मजदूर, पूंजीवाद, शोषण।

19वीं सदी के एक स्वतंत्र विचारक और राजनीतिक आंदोलनकारी कार्ल मार्क्स जर्मनी के एक मूर्धन्य सामाजिक सिद्धांत थे। वे क्रांतिकारी साम्यवाद और समाजवाद में विशेषतः ''ऐतिहासिक भौतिकवाद'' के अपने सिद्धांत के लिए जाने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि मार्क्स स्वयं समाजशास्त्री नहीं थे, किंतु मार्क्स के विचारों में अवश्य समाजशास्त्र निहित है। देखा जाए तो उनके विचार इतने व्यापक है कि उन्हें 'समाजशास्त्र के घेरे में सीमित नहीं किया जा सकता। मार्क्स ने जर्मनी के हीगलवाद, फ्रांस के समाजवाद और ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था संबंधी विचारों का समन्वय कर जिन अवधारणा और सिद्धांतों को जन्म दिया, वही बाद में मार्क्सवाद नाम से चर्चित एवं प्रसिद्ध हुई। यहां एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि अमेरिका में साठ के दशक तक मार्क्सवादी सिद्धांत का कोई नामोनिशान नहीं था। साठ के दशक के वियतनाम युद्ध, विरोधी आंदोलन और अश्वेत लोगों के नागरिक अधिकार संबंधी आंदोलन, महिलावादी आंदोलन के पुनः उभार और विश्वविद्यालय परिसरों में विद्यार्थी असंतोष जैसी घटनाओं ने अमेरिका में मार्क्सवादी चिंतन के फलने–फूलने के लिए आवश्यक आधार भूमि को तैयार किया।

मार्क्स एक पक्का तर्कवादी चिंतक था। उनका कहना था कि वह समाज जो कुछ उपलब्धियां करना चाहता है उसे अपने सभी भ्रम या माया को त्याग देना चाहिए। मार्क्स अपने जीवन प्रयंत इस मुहावरे का अपने ऊपर लागू किया। उसका पूरा विश्वास मानव तर्क में था और वह सभी कार्यों के लिए स्वतंत्रता को एक आवश्यक दशा मानते थे। उनका कहना था कि उस व्यवस्था को जितना जल्दी हो सके ठोकर लगा देना चाहिए जो मनुष्य को उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती। मार्क्स हर तरह से और अपने जीवन में बराबर मानवतावादी रहा। वह तत्कालीन समाज को अनिवार्य रूप से गैर मानवीय समाज मानता था वह कहता था कि यह समाज मनुष्य को कहीं का नहीं रखता। उनके अलगाव की अवधारणा उसके इसी मानवतावाद में निहित है। किसी भी पूंजीवादी व्यवस्था में अलगाव के अतिरिक्त एक व्यक्ति की नियति और कुछ नहीं है। यह वर्ग समाज जिसमें गरीब–गुरबे रहते हैं उनका वास्तविक जीवन से पूर्णतया अलगाव हो जाता है।

मार्क्स मनुष्य की संपूर्ण स्वतंत्रता में भरोसा रखते थे। तर्क का प्रयोग इसी स्वतंत्रता में किया जा सकता है। वे ऐसे राजनीतिक समुदाय की कल्पना करते हैं, जिसमें सही अर्थों में प्रजातंत्र हो, जहां राज्य ओझल हो जाए, जहां वर्ग जैसी कोई व्यवस्था ना हो। यूरोप में जब मार्क्स ने जन्म लिया और बहुत कुछ लिखा, एक धुटन का वातावरण था। वे सही अर्थों में आदर्शवादी थे और यूरोप के उदारवाद के विरोधी थे। उन्होंने अपने समय में जो कुछ लिखा, इस लेखन में आने वाली कई दशकों के विचारों को प्रभावित किया। हम कार्ल मार्क्स से असहमत हो सकते हैं, उनके विचारों की आलोचना कर सकते हैं, लेकिन पद–दलित समाज के लिए उन्होंने जो कुछ किया है उसे नकारा नहीं जा सकता।

आज भी मार्क्स का कथन कम से कम तीसरी दुनिया के पिछड़ें देशों के लिए एक बहुत बड़ा संदेश है। उदाहरण के लिए मार्क्स के इस संदेश पर गौर कीजिए– अब अधिक समय तक आपको गरीब नहीं रहना पड़ेगा। हर जगह आदमी हमेशा शोषक और शोषित रहे हैं। जब तक उत्पादन के साधन वस्तुओं की आवश्यकता के अनुपात में नहीं रहेंगे शायद यह शोषण अपरिहार्य है, रोका नहीं जा सकता। लेकिन ऐसी कोई अपरिहार्य अब नहीं है। तुमको अब गरीब नहीं रहना पड़ेगा। तुम गरीब इसलिय नहीं हो कि तुमने ऐसा कोई पाप किया है। तुम गरीब इसलिए नहीं हो कि ईश्वर की ऐसी इच्छा है। यह तुम्हारा दुर्भाग्य भी नहीं है। तुम इसलिए गरीब हो की आर्थिक और राजनैतिक दशाएं ही ऐसी है। यह दशाएं पूंजीवाद कहलाती हैं। शुरू–शुरू में पूंजीवाद आदमी के इतिहास में एक ताकतवर शक्ति थी। इस कारण मनुष्य उत्पादन की सुविधाओं को प्राप्त कर लिया।

तुम गरीब हो, तुम्हारा शोषण हुआ है और यह शोषण तब तक चलता रहेगा जब तक पूंजीवाद रहेगा। यह प्रगति के रास्ते में रुकावट हैः तुम्हारी प्रगति के। इसका मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में है : निजी और सार्वजनिक। इन सभी क्षेत्रों को यह पूंजीवादी शक्ति भ्रष्ट करती है। पूंजीवादी वह व्यवस्था है जो तुम्हारा शोषण करती है।

अब तुनहे गरीब रहने की आवश्यकता नहीं है। वो दशाएँ जो तुम्हें गरीब बनाती है, उन्हें बदलना है। और उन्हें बदल दिया जाएगा। स्वयं का खात्मा करते है। तुम शायद जानो या ना जानो, तुम स्वयं ही एक क्रांति करने वाले हो। वे जो तुम्हारे ऊपर हुकूमत करते हैं और तुम्हें गरीब बनाए रखते हैं, उठाकर फेंक दिए जाएंगे। आदमी के विकास में यह अगला कदम होगा। और इस कदम को आप ही उठाएंगे। क्रांति द्वारा आप पूंजीवादी को खत्म कर देंगे जड़ से। क्रांति द्वारा आप हमेशा के लिए आदमी द्वारा आदमी का शोषण समाप्त कर देंगे।आप एक ऐसे समाज वादी समाज को अपनाएँगे जिसमे मनुष्य प्रकृति पर विजय पायेंगा। और दुनियां में फिर कभी आदमी गरीब और शोषण के रूबरू नहीं होगा।

मार्क्स के दर्शन सर्वप्रमुख उद्देश्य सर्वहारा वर्ग की स्पष्ट हितकामना तथा पूँजीवाद व्यवस्था के विनाश की अवश्यम्भाविता को प्रदर्शित और प्रमाणित करना है। उन्होंने पूँजीवाद के विकास और सामाजिक परिणामों की जो व्याख्या की है उसकी मुख्य बात उनका अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त है, जिसे उन्होंने मूल्य के श्रम – सिद्धान्त के आधार पर स्थिर किया। मूल्य के श्रम – सिद्धान्त का अर्थ यह है कि ''अन्त में किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उसके उत्पादन में लगाए गए श्रम की मात्रा पर निर्भर है।'' यह सिद्धान्त मार्क्स के बहुत पहले अनुदार तथा उग्रसुधारवादी सिद्धान्तियों में प्रचलित था। वास्तव में यह एक अंग्रेजी सिद्धान्त है, जिसको सत्रहवीं सदी में प्रतिपादित करने का श्रेय सर विलियम पेटी को है। उनके बाद अन्य प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों , विशेषकर एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डों ने भी इस पर अनेक प्रकार से जोर दिया और इसमें संशोधन भी किया। उदाहरणार्थ , एडम स्मिथ ने वस्तु के प्राकृतिक और कृत्रिम (

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 11, pp: 77-79 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

तजपिबपंस) मूल्यों के भेद पर अधिक बल दिया। प्राकृतिक मूल्य से उनका तात्पर्य वस्तु के आन्तरिक

मूल्य से था और कृत्रिम मूल्य से तात्पर्य उसके अंतरण मूल्य या क्रय शक्ति से, जो मुख्य इसलिए उसके उत्पादन में खर्च हुए श्रम से घटित होता है। एडम स्मिथ के अनुसार किसी वस्तु का सामान्य मूल्य साधारणतया उसके उत्पादन में लगे हुए श्रम को मालूम करके निर्धारित करना चाहिए। उसी प्रकार रिकार्डो के अनुसार अधिकांश वस्तुओं का सामान्य अंतरण – मूल्य उनके उत्पादन में लगाए गए श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। रिकार्डो के पश्चात उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कुछ अंग्रेज लोगों ने यह तर्क दिया कि चूँकि "श्रमजीवी लोग सभी सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं" इसलिए "श्रमजीवियों को श्रम के सभी उत्पादन का अधिकार है।" अंकों का श्रम – मूल्य सिद्धान्त के इन श्रमिकों – समर्थक बुकिंग की कृतियों से कई अवतरण के बारे में अपने विषय का समर्थन किया है।

अतः स्पष्ट है कि तत्कालीन अन्य कई अर्थशास्त्रियों की भाँति अंक भी यह मानते थे कि श्रम से मूल्य बनता है अर्थात् मूल्य की उत्पत्ति श्रम से होती है। मार्क्स ने ''स्पष्ट तो यह व्याख्या की'' कि किसी वस्तु के उपयोग मूल्य अर्थात् वस्तु की उपयोगिता और वांछनीयता का उस श्रम से कोई सम्बन्ध नहीं है जो उसके उत्पादन में लगाया गया है। हवा और पानी उपयोगी हैं, हालांकि उन पर कोई श्रम खर्च नहीं हुआ है। किसी वस्तु का विनिमय मूल्य इसलिए होता है कि उसे उपयोगी बनाने के लिए उस पर श्रम किया जाता है। ऐसे मूल्यों की दर आवश्यक श्रम की मात्रा पर निर्भर होगी, जिसके अनुपात में दो वस्तुओं, जैसे अन्न और लोहे, का अंतकरण उसका माप होगा जो वस्तु से किया जा सकता है जो दोनों में सामान्य है और जो इन दोनों में सामान्य है, वह उनका निर्माण करने वाले रासायनिक द्रव्य या कोई प्राकृतिक गुण या तत्त्व नहीं है, वर्नमान – श्रम है, जो उनके उत्पादन में व्यय हुआ है। ''इस सम्बन्ध में मार्क्स ने अपनी अमर कृति कैपिटल में लिखा है,'' इस प्रकार यदि हम वस्तुओं के उपयोग – मूल्य का विचार न करें, तो उनमें एक ही वस्तु सामान्य बचती है और वह वस्तुओं की श्रम द्वारा उत्पत्ति है।

इस कारण एक उपयोगी वस्तु का मूल्य इसलिए ही है कि मानव – श्रम का उसमें उपयोग हुआ है। तब इस मूल्य की मात्रा का माप कैसे किया जाए ? स्पष्टतः मूल्य की सृष्टि करने वाले तत्त्व की मात्रा–श्रम से है जो वस्तु में निहित है। श्रम की मात्रा का माप उसकी अवधि से होता है और श्रम– काल का मापदण्ड सप्ताहों , दिवसों और घंटों में होता है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से हम यह देखते हैं कि जिसके द्वारा किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है , वह है श्रम – काल या श्रम की मात्रा जो उस वस्तु के उत्पादन के लिए सामाजिक दृष्टि से आवश्यक है। दो वस्तुओं के मूल्य का अनुपात उन पर खर्च किए गए श्रम – काल के अनुपात के अनुसार होता है। ''इस प्रकार मार्क्स के अनुसार किसी भी वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम – काल पर निर्भर है। अतः स्पष्ट है कि यदि किसी एक वस्तु के उत्पादन में दो दिन का समय लगता है और दूसरे एक वस्तु के उत्पादन के लिए चार दिन का तो, दूसरी वस्तु का मूल्य प्रथम वस्तु के मूल्य से अधिक (दुगुना) होगा ।

मार्क्स के इस मत से अनेक लोग इस आधार पर सहमत नहीं हैं कि किसी वस्तु का मूल्य केवल श्रम – काल पर ही कैसे निर्भर हो सकता है क्योंकि उस वस्तु के उत्पादन में लगे कच्चे माल आदि का भी तो मूल्य होता है। किसी भी वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय उत्पादक उसमें केवल श्रम– काल को ही नहीं वरन् कच्चे माल आदि का भी मूल्य सम्मिलित कर लेता है। यदि ऐसा न होता तो कुछ ही घंटों में बनी एक सोने की अंगूठी का मूल्य तीन– चार दिन में बनी एक लकड़ी की मेज से अधिक क्यों होता ? इसके उत्तर में मार्क्स का तर्क यह है कि, सोने का जो कुछ भी मूल्य है वह प्रकृति की देन है। उस मूल्य की सृष्टि में मनुष्य का कोई हाथ नहीं। जहाँ तक मनुष्यों के प्रयत्नों द्वारा मूल्य की उत्पत्ति का सम्बन्ध है , वहाँ तक वह श्रम का ही फल है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि मार्क्स का मूल्य का श्रम – सिद्धान्त रूप से यह बतलाता है कि वस्तुओं का वास्तविक मूल्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के पश्चात् (अर्थात् मूल्य केवल श्रम से ही उत्पन्न होता है) मार्क्स ने 'पूँजी' के संचय के सम्बन्ध में भी अपना विचार व्यक्त किया है। यह सच है कि श्रम से मूल्य बनता है, श्रम अपने – आप मूल्य उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रखता ऐसा करने के लिए उसे कच्चा माल, औजार, मशीन आदि की आवश्यकता पड़ती है। वैसे पूँजी का सर्वप्रथम रूप 'धन' है, परन्तु धन से कच्चा माल, औजार, मशीन आदि को भी प्राप्त किया जा सकता है और जाता है। इस पूँजी का अर्थ केवल धन ही नहीं, वरन् कच्चा माल, औजार, मशीन आदि भी है। इन सबका या संक्षेप में पूँजी का उपयोग किए बिना श्रम को उत्पन्न नहीं कर सकता। परन्तु इससे मूल्य का श्रम– सिद्धान्त झूठा नहीं होता। पूँजी कहाँ से आई ? इस प्रश्न के उत्तर में मार्क्स का कथन है कि अन्तिम रूप में पूँजी भी श्रम से ही उत्पन्न होती है और वह इस रूप में कि श्रम से मूल्य या धन उत्पन्न होता है और धन से कच्चा माल, औजार, मशीन आदि प्राप्त किया जाता है और उन्हें उत्पादन में लगा दिया जाता है, यह पूँजी है । इतना ही नहीं, पूँजीपति अपने धन के बल पर निर्धन श्रमिकों के श्रम को खरीदता है और उसे उत्पादन कार्यों में लगाता है। परन्तु इन उत्पादक क्रियाओं के द्वारा श्रमिक मूल्य उत्पन्न करता है। उसमें से बहुत कम भाग (मजदूरी के रूप में) श्रमिक को मिलती है और अधिकतर भाग पूँजीपति हड़प जाता है। श्रमिकों को उनके वास्तविक अधिकार से वंचित करना ही उनका शोषण करना है। इस प्रकार शोषण के द्वारा पूंजीपतियों के पास पूंजी इकट्ठी होती रहती है। कुछ लोगों का कथन है कि पूँजीपति लोग मितव्ययी होते हैं और प्रत्येक विषय में सोच – विचार कर किफायत से खर्च करते हैं। इसीलिए उनके पास पूँजी एकत्र होती रहती है। परन्तु मार्क्स का कथन है कि ये सब अर्थहीन तथा हास्यकर तर्क हैं। सदा से ही पूँजीपति लोग बड़े ही ऐश और आराम की जिन्दगी बिताने के आदी हैं और वास्तव में वे भोग– विलास का जीवन ही बिताते आए हैं – मितव्ययता उन्होंने कब और किस बात में की? पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण करने के तरीके को मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' के आधार पर समझाया है। आपसे पहले कई लेखकों ने विविध रूप में उन मूल्यों की धारणाएँ प्रस्तुत की हैं जिन्हें श्रमजीवी लोग उत्पन्न करते हैं, परन्तु उन्हें जितना वेतन मिलता है वह उनके द्वारा उत्पन्न किए गए मूल्यों से कहीं कम होता है।

अठारहवीं शताब्दी के कुछ अर्थशास्त्रियों ने कृषि– उत्पादन के आधार पर उक्त विचार को प्रस्तुत किया था। उनके मतानुसार कृषि से इतना उत्पादन होता है जिससे भूमि के उपयोग की कीमत और कृषि– श्रमिकों की मजदूरी चुका देने पर भी बड़ी बचत होती है। पूँजीपति का सर्वप्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक मुनाफा कमाना है। मजदूरों को जितना कम वेतन दिया जाएगा उतना ही अधिक मुनाफा पूँजीपतियों की जेब में जाएगा। इस कारण भरसक यही प्रयत्न करते हैं कि उन्हें श्रमिकों को कम–से–कम मजदूरी देनी पड़े।

साधारणतया पूँजीपति मजदूरों को केवल इतना ही वेतन देता है जिससे वे किसी तरह भूख दूर कर सकें और भविष्य के लिए श्रमिक सन्तान पैदा कर सकें। इतना ही नहीं, पूँजीपति जो कुछ भी मजदूरी श्रमिकों को देता है उसे भी वस्तु की लागत मूल्य में सम्मिलित कर लेता है, और इस लागत मूल्य से कम मूल्य में पूँजीपति किसी वस्तु को बाजार में नहीं बेचता।

अतः स्पष्ट है कि श्रमिकों द्वारा उत्पन्न वस्तुओं को बेचने से जो लाभ पूँजीपति को होता है उसका कोई भी अंश श्रमिकों को नहीं मिलता है। यही उनके प्रति अन्याय है और यही उनका शोषण है। श्रमिक के पास जीविका पालन करने का और कोई साधन भी तो नहीं होता, इसलिए अपना श्रम बेचकर वे किसी प्रकार अपने और अपने परिवार के अन्य सदस्यों के लिए रोटी कमा लेते हैं। इस दृष्टिकोण से मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 11, pp: 77-79 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

सिद्धान्त 'जीविका– योग्य– मजदूरी' की अवधारणा से सम्बन्धित है। इसका सामान्य सिद्धान्त यह है कि ''मजदूर को वह कीमत दी जाती है जो एक वस्तु की भाँति उसके श्रम की होती है और यह कीमत , बाजार के नियमों के अधीन , एक ऐसी रकम होती है जिससे वह मानव– वस्तु (अर्थात् श्रम) बराबर प्राप्त होता रहे, अर्थात् वेतन या मजदूरी केवल मात्र मजदूर तथा उसके परिवार को जीवित रखने योग्य जीविका के साधन के बराबर होती है।'' यह सब अधिक से अधिक अतिरिक्त मूल्य हजम कर जाने के लिए पूँजीपतियों का शोषण– कुचक्र है।

मार्क्स के अनुसार पूँजीपतियों का यह शोषण – कुचक्र बहुत समय पहले से ही चल रहा है। वास्तव में पूँजीवादी समाज तथा दास– प्रथा वाले या सामन्तशाही समाज में केवल नाम का ही अन्तर है। जिस प्रकार प्राचीनकाल में दास या अर्द्ध– दास किसान अपने स्वामी या सामन्त के लिए अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न करने पर विवश किए जाते थे, उसी प्रकार आज का श्रमिक भी अपने श्रम का अधिकतर भाग पूँजीपतियों के लिए अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न करने में लग देता है। अन्तर केवल इतना ही है कि प्राचीनकाल का श्रमजीवी एक दास या अर्द्ध– दास की हैसियत में काम करता था और आज का श्रमजीवी एक ऐच्छिक समझौते के अनुसार काम पर लगाया जाता है। परन्तु वास्तव में यह समझौता भी केवल नाम मात्र के लिए 'ऐच्छिक' होता है, क्योंकि पूँजीपति उत्पादन के उन साधनों (मशीनों, यन्त्रों आदि) के स्वामी होते हैं, जिनका उपयोग करके ही श्रमिक अपने तथा पूँजीपति के लिए मूल्य की सृष्टि कर सकता है, अन्यथा नहीं। श्रमिक के पास अपनी चीज केवल अपना श्रम ही होता है, कुछ भी नहीं। उत्पादन के कोई साधन अपने हाथ में न होने के कारण जीविका पालन के लिए निर्धन श्रमिक के पास अपना श्रम बेच देने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं होताय और वे करते भी यही हैं कि अपना श्रम वे पूँजीपति को ऐसे दामों में बेचते हैं जो उन्हें तथा उनके परिवार वाले को केवल जीवित रखने के लिए पर्याप्त हो।

मार्क्स अपने इस अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके पूजीवादी शोषण की ठठरी को सामने लाकर खड़ा कर देना चाहते थे। साथ ही, इस सिद्धान्त ने सर्वहारा वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच के विरोध के आर्थिक आधार को स्पष्ट कर दिया। लेनिन ने लिखा है,''अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त ही मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त की आधारशिला है।'' मानव समाज के विकास के नियम सम्बन्धी अपनी भौतिकवादी शिक्षा के बाद, सर्वहारा वर्ग के इस प्रतिभाशाली सिद्धान्त का अतिरिक्त मूल्य सम्बन्धी सिद्धान्त उनकी दूसरी महान खोज थी।

''फ्रांसिस डब्ल्यू कोकर ने लिखा है,'' मार्क्स के ग्रन्थों के शायद सबसे प्रभावशाली भाग वे हैं जिनमें उन्होंने लाभ की अनिवार्य आवश्यकता से प्रभावित पूँजीपतियों के उन प्रयत्नों का वर्णन किया है जो वे अतिरिक्त मूल्य को बढ़ाने के निमित्त मजदूरों के समय तथा उनकी शक्ति के शोषण के लिए करते हैं। उनके ग्रन्थों का वह भाग भी बड़ा प्रभावशाली है जिसमें ऐतिहासिक प्रमाणों तथा सरकारी विवरणों के अनेक उदाहरण देकर इस शोषण से उत्पन्न होने वाली मजदूरों की कारुणिक एवं दयनीय अवस्था का चित्र अंकित किया है। उनका अन्तिम निष्कर्ष यह है कि इन अवस्थाओं को समाप्त करने का एकमात्र उपाय है, व्यक्तिगत भाड़े, व्याज तथा मुनाफे के सभी अवसरों का सर्वनाश और यह परिणाम केवल समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत ही सम्भव है, जिसमें व्यक्तिगत पूँजी का स्थान सामूहिक पूँजी ले लेगी, न कोई पूँजीपति रहेगा और न मजदूर और सब व्यक्ति सहकारी उत्पादक बन जाएंगे।

''उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि मार्क्स का निश्चित मत है कि 'अतिरिक्त मूल्य' ही वह हथियार है जिसके द्वारा पूँजीपति वर्ग श्रमिक वर्ग का निरन्तर शोषण करता है और यह शोषण ही अन्ततः वर्ग– संघर्ष का कारण बनता है।

संदर्भ–सूची:–

- मुखर्जी, रवीद्र नाथ– सामाजिक विचारधारा
- एस एल दोषी , पी सी जैन , प्रमुख समाजशास्त्रीय विचारक
- हरीकृष्ण रावत समाजशास्त्रीय चिंतक एवं सिद्धांतकार
- यशपल, मार्क्सवाद
- डॉ रवीद्र नाथ मुखर्जी, समकालीन उच्चत्तर समाजशास्त्रीय सिद्धांत
- हिरेन्द्र प्रसाद सिंह, समाजशास्त्र
- हरिकृष्ण रावत, उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश